उत्तर भारत में गुर्जर-प्रतिहार वंश: एक अभिलेखीय अध्ययन

डॉ. जगदीश प्रसाद

647 ई. में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उसके समस्त साम्राज्य में अराजकता की स्थिति पैदा हो गयी। संभवत: इसका मुख्य कारण हर्ष के बाद उसका कोई उत्तराधिकारी न होना था। इस राजनीतिक शून्यता का लाभ उठाकर कई सांमत स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगे। एक चीनी अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि हर्ष के नि:सन्तान मरने पर उसके मंत्री अर्जुन ने कन्नौज की सत्ता हथिया ली थी।[1] परन्तु इस अनुश्रुति में इतने अविश्वसनीय विवरण हैं कि इसकी ऐतिहासिकता पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सातवीं सदी के प्रथम दशक में हर्ष ने अपनी राजधानी थानेसर से बदलकर कन्नौज बनाये जाने के कारण हरियाणा क्षेत्र का राजनीतिक महत्व कम हो गया था। हर्ष की मृत्यु के बाद हरियाणा की राजनीतिक कमान किसने संभाली, यह एक विवाद का विषय बना हुआ है। प्रतिहार शासक मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख में भण्डीकुल का उल्लेख मिलता है।[2] बाण के हर्षचरित में भी भण्डी नाम के एक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है जो हर्ष का निकट सम्बन्धी था।[3] कुछ विद्वानों के अनुसार यह संभव है कि राजधानी परिवर्तन के पश्चात् हर्ष ने अपना विश्वासपात्र और निकट का सम्बन्धी होने के कारण भण्डी को थानेसर की प्रशासनिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंपा हो।[4] उनके अनुसार हर्ष की मृत्योपरान्त जब उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल हुई तो भण्डी अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी ने हरियाणा पर अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की हो और तत्पश्चात् भण्डी परिवार यहां पर प्रतिहार शासक वत्सराज के उदय तक शासन करता रहा[5] लेकिन यह मत केवल कल्पना पर आधारित है, क्योंकि भण्डी ने अपना कोई राजवंश स्थापित नहीं किया था, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। *बुद्धप्रकाश* के अनुसार हूणों और तुर्कों ने इस काल में उत्तर की ओर से पंजाब पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से कई बार श्रीकंठ जनपद को भी अपने आक्रमणों का निशाना बनाया[6], किन्तु वे यहां पर पैर नहीं जमा सके।

यशोवर्मन

हर्ष की मृत्यु के लगभग आधी शताब्दी बाद, सातवीं सदी के अन्त अथवा आठवीं सदी के प्रारंभ में कन्नौज पर यशोवर्मन नामक एक शक्तिशाली शासक ने अधिकार कर लिया था। वह किसी राजवंश से सम्बन्धित था या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उसका राजकवि वाक्पतिराज अपने प्राकृत काव्य गौड़वहो में उसकी विजय-यात्रा का वर्णन करते हुए बताता है कि पूर्वी और दक्षिणी क्षेत्रों को विजित करने के पश्चात् वह मरुदेश (राजपूताना), श्रीकंठ और कुरुक्षेत्र होता हुआ कन्नौज की तरफ लौटा।[7] इससे स्पष्ट है कि हरियाणा क्षेत्र यशोवर्मन के अधिकार में आ गया था किन्तु श्रीकंठ जनपद की विजय के समय यहां के किसी शासक ने उसका विरोध किया था, इस बात का गौड़वहो में कोई उल्लेख नहीं मिलता। संभवत: उस समय यह क्षेत्र किसी कमजोर शासक के अधीन रहा होगा, जिसने बिना किसी विरोध के ही यशोवर्मन की अधीनता स्वीकार कर ली। यद्यपि यशोवर्मन की हरियाणा विजय की तिथि के बारे में निश्चित रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन अनुमानत: यह घटना 730 ई. के आसपास की हो सकती है।

कश्मीर नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ से पराजय

कल्हण की राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि कश्मीर नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ कन्नौज सम्राट् यशोवर्मन का समकालीन था। प्रारंभ में दोनों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे[8] लेकिन यह मैत्री स्थायी नहीं रह सकी। चीनी वृत्तों से ज्ञात होता है कि दोनों के संघर्ष का कारण जालंधर (पंजाब) के आसपास के क्षेत्रों का अपने-अपने राज्य में मिला लेने की योजना थी।[9] अत: युद्ध होना स्वाभाविक था। लम्बे युद्ध के पश्चात् संधिवार्ता हुई, लेकिन सफल नहीं हुई। अत: पुन: युद्ध हुआ।[10] *राजतरंगिणी* के अनुसार इस युद्ध में ललितादित्य ने यशोवर्मन को समूल नष्ट कर दिया[11] और यमुना से लेकर कालिका (काली नदी) तक कान्यकुब्ज का प्रदेश उसके अधिकार में आ गया।[12] *राजतरंगिणी* के इस विवरण के आधार पर स्मिथ ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस युद्ध में यशोवर्मन मारा गया और उसका राज्य ललितादित्य के अधीन हो गया।[13] परन्तु *राजतरंगिणी* में ही ललितादित्य की इस विजय के उल्लेख के तुरन्त बाद कल्हण का कथन है कि वाक्पतिराज और श्री भवभूति आदि कवियों से सेवित कवि

यशोवर्मन स्वयं उसके (ललितादित्य के) गुणों का स्तुतिकार बन गया।[14] अत: यदि यशोवर्मन वास्तव में युद्ध में मारा गया था तो मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा ललितादित्य का प्रशस्तिगान करने का प्रश्न ही कहां उठता है। आर.सी. मजूमदार का मानना है कि कल्हण ने अप्रासंगिक रूप से कहा है कि ललितादित्य ने यशोवर्मन को 'समूल नष्ट कर दिया'। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि उसका वध किया गया था।[15] इस सम्बन्ध में त्रिपाठी का यह मत उचित ही प्रतीत होता है कि प्रशस्तिगान के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यही कहा जा सकता है कि यशोवर्मन युद्ध में पराजित हुआ था तथा ललितादित्य की अधीनता स्वीकार कर लिए जाने पर उसे राज्य का अधिकारी बने रहने दिया।[16] इस प्रकार राजतरगिणी का 'समूलं उद्पाटयत' पद संभवत: यशोवर्मन के समूल विनाश का नहीं, बल्कि केवल उसकी सैन्य-शक्ति के विनाश का सूचक प्रतीत होता है। आर.जी. भण्डारकर के अनुसार, निश्चित ही यशोवर्मन के राजपद की क्षति क्षणिक थी, क्योंकि ऐसा नहीं लगता कि कश्मीर नरेश ने उसका राज्य छीन लिया हो, बल्कि यशोवर्मन द्वारा अधीनता स्वीकार कर लेने पर उसके साथ सन्धि स्थापित कर वह चला गया प्रतीत होता है। इस युद्ध की तिथि अधिकतर विद्वान् 733 ई. मानते हैं।[17]

उपर्युक्त तर्कसंगत तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि ललितादित्य के हाथों पराजित होने के पश्चात् भी यशोवर्मन मृत्युपर्यन्त कन्नौज पर शासन करता रहा और हरियाणा उसके साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बना रहा। उसका शासनकाल कब से कब तक था इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं। त्रिपाठी उसे 725 ई. तथा 752 ई. के बीच मानते हैं[18] जबकि मजूमदार उसे 700 ई. से 740 ई. के बीच मानते हैं।[19] जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि यशोवर्मन की मृत्यु के बाद उसकी रानी यशोदेवी से उत्पन्न उसके पुत्र आम ने कन्नौज और ग्वालियर से शासन किया।[20] इसकी पुष्टि *प्रभावकचरित* से भी होती है।[21] आम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र दुन्दुक हुआ, जिसे उसी के पुत्र भोज ने मार डाला लेकिन इनके सम्बन्ध में जैन ग्रंथों से मिलने वाली जानकारियां अत्यल्प, भ्रमात्मक और परस्पर विरोधी हैं। अन्य साक्ष्यों के साथ इनका मेल नहीं बैठता, इसलिए इस युग का इतिहास अस्पष्ट है। निस्सन्देह ही हरियाणा का राजनीतिक परिदृश्य भी यशोवर्मन की मृत्यु के बाद पुन: अन्धकार में विलुप्त हो गया।

प्रतिहार आधिपत्य की स्थापना

यशोवर्मन की मृत्यु के पश्चात् हरियाणा एक बार फिर से राजनीतिक अराजकता का शिकार हुआ। इस राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण में हरियाणा में क्या कुछ हुआ, इसकी कोई जानकारी नहीं है किन्तु कुछ विद्वानों ने अपने अनुमानों के आधार पर घटना-क्रम तैयार करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। एच.एन. द्विवेदी का मानना है कि प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम (740-760 ई.) ने ललितादित्य से हरियाणा क्षेत्र को जीतकर अपनी अधीनता में यहां का शासन चलाने के लिए एक स्थानीय तोमर सरदार जाउल को नियुक्त किया, जिसने यमुना के किनारे अनंगपुर की स्थापना की। कुछ समय बाद जाउल ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करके 'अनंगपाल' विरुद् धारण किया तथा अनंगपाल प्रथम के नाम से शासन करने लगा।[22] लेकिन द्विवेदी का यह मत उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रतिहार शासक वत्सराज से पूर्व किसी प्रतिहार शासक का हरियाणा पर अधिकार होने, नागभट्ट व जाउल के समाकालीन होने तथा जाउल का 'अनंगपाल' विरुद् धारण करके अनंगपाल प्रथम नाम से प्रसिद्ध होने के समर्थन में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

प्रतिहार शासक मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहार राजा नागभट्ट प्रथम के पौत्र वत्सराज ने प्रसिद्ध भण्डीकुल से बलपूर्वक राज्य छीन लिया।[23] कुछ इतिहासकारों ने भण्डीकुल का सम्बन्ध हर्षचरित[24] में वर्णित हर्ष के ममेरे भाई भण्डी से जोड़कर यह बताने का प्रयास किया है कि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् यह वंश हरियाणा पर स्वतंत्र रूप से शासन करता आ रहा था जिससे वत्सराज ने बलात् सत्ता छीन ली लेकिन हरियाणा में किसी भण्डीकुल का शासन रहा था, यह विद्वानों का केवल अनुमानमात्र ही था, ऐतिहासिक तथ्य नहीं। हाल ही में कुछ नये तथ्य प्रकाश में आए हैं जो हरियाणा पर प्रतिहार आधिपत्य की प्रमाणिक सूचना देते हैं। हरियाणा में सिरसा जिले के जोधका गांव से प्रतिहारों का अब तक का प्राचीनतम अभिलेख मिला है जो प्रतिहार शासक वत्सराज का शक संवत् 717 (795 ई.) का है।[25] इस अभिलेख के आधार पर यह प्रमाणित हो गया है कि वत्सराज पहला प्रतिहार शासक था जिसने हरियाणा को प्रतिहार साम्राज्य का अंग बनाया।[26] हरियाणा में उसने सत्ता भण्डीकुल से नहीं बल्कि किसी अज्ञात तोमर शासक व्याघ्रराज को पराजित

करके प्राप्त की थी।[27]

त्रिकोणात्मक संघर्ष तथा प्रतिहार सत्ता का विकास

उत्तर भारत में कन्नौज को सर्वप्रथम साम्राज्यिक गौरव प्रदान करने का श्रेय हर्ष को जाता है। उसके बाद इसके प्रभाव को बनाये रखने में यशोवर्मन का योगदान भी उल्लेखनीय रहा। यशोवर्मन के बाद कन्नौज में आयुध वंश का शासन स्थापित हुआ। इस वंश के शासकों की अकर्मण्यता के कारण कुछ उदीयमान शक्तियों ने कन्नौज में अपनी राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप प्रारंभ कर दिया। ये शक्तियां थीं – मालवा के प्रतिहार, बंगाल के पाल और दक्कन के राष्ट्रकूट। इन तीनों के बीच प्रभुत्व के लिए लड़े गए संघर्ष को त्रिकोणात्मक संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि इस संघर्ष का हरियाणा के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है किन्तु हर्ष के समय से ही हरियाणा का राजनीतिक रूप से कन्नौज साम्राज्य के साथ जुड़े होने के कारण कालान्तर में भी यह किसी न किसी प्रकार कन्नौज की राजनीति से अवश्य प्रभावित होता रहा। त्रिकोणात्मक संघर्ष के परिणामस्वरूप कन्नौज साम्राज्य को प्राप्त करने में अन्ततः प्रतिहार शासक सफल रहे। इसलिए प्रतिहारों के सम्बन्ध में उनकी संक्षिप्त प्रारंभिक जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

उज्जैन के प्रतिहार वंश का पहला शासक नागभट्ट प्रथम था, जिसकी शासनावधि को विद्वान् आठवीं सदी के तीसरे और पांचवें दशकों के बीच रखते हैं। ग्वालियर अभिलेख से अरबों (मलेच्छों) पर उसकी विजय का उल्लेख मिलता है। लेकिन राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष के संजन अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग से पराजित हुआ था।

नागभट्ट के पश्चात् उसका भतीजा कक्कुक अथवा कक्कुस्थ प्रतिहार वंश का राजा बना। ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक साधारण शासक था। कक्कुक के बाद उसका छोटा भाई देवराज अथवा देवशक्ति शासक बना। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार उसने अपने अनेक शत्रुओं को पराजित किया। देवराज की शासनावधि 760–775 ई. तक मानी जाती है। देवराज के पश्चात् उसका पुत्र वत्सराज (775–800 ई.) उज्जैन का शासक बना। वह बड़ा साहसी राजा था। गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य की नींव रखने का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है।

वत्सराज का कन्नौज पर आक्रमण

जैन ग्रंथ हरिवंश पुराण से ज्ञात होता है कि 783 ई. में इन्द्रायुध कन्नौज पर शासन कर रहा था।[28] इसी के काल में त्रिकोणात्मक संघर्ष प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम संघर्ष की शुरुआत प्रतिहार शासक वत्सराज ने की। उसने कन्नौज पर आक्रमण करके इन्द्रायुध को पराजित किया। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इन्द्रायुध द्वारा अधीनता स्वीकार कर लिए जाने पर वत्सराज ने उसे अधीनस्थ शासक के रूप में कन्नौज का शासक बना रहने दिया।[29]

वत्सराज की पाल शासक धर्मपाल पर विजय

पाल नरेश धर्मपाल भी उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट् बनने के लिए कन्नौज को अपने अधिकार में करना चाहता था। इस समय तक उसने गंगा-यमुना दोआब तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।[30] अत: कन्नौज विजय के पश्चात् वत्सराज को धर्मपाल से निपटना आवश्यक हो गया। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय के 808 ई. के राधनपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि वत्सराज ने गौड़ देश की राज्यलक्ष्मी को आसानी से हस्तगत कर उसके 'दो राजछत्रों को छीन लिया था'।[31] इस तथ्य की पुष्टि गोविन्द तृतीय के ही 808 ई. के *वनि-दिन्दोरी*[32] और 812 ई. के बड़ौदा अभिलेख से होती है। पाल नरेश धर्मपाल पर वत्सराज की यह विजय उसकी सबसे बड़ी सफलता थी।

प्रतिहारों के शत्रु राष्ट्रकूटों के इन अभिलेखों में वत्सराज की गौड़ शासक पर विजय का उल्लेख निश्चित रूप से तथ्याधारित है। इसे नकारा नहीं जा सकता। वत्सराज की इस विजय की पुष्टि *पृथ्वीराजविजय*[33] से भी होती है। इसके अनुसार वत्सराज के चाहमान सामन्त दुलर्भराज ने गौड़देश को जीतकर अपनी तलवार को गंगासागर के जल से पवित्र किया था। दुर्लभराज का गौड़ देश पर यह आक्रमण केवल अपने सम्राट् वत्सराज की सेनाओं के साथ सामन्त रूप में ही संभव था। इस प्रकार समान रूप से साम्राज्य-स्थापना की आकांक्षा रखने वाले धर्मपाल पर विजय प्राप्त कर वत्सराज को उत्तरी भारत में अपनी सर्वोच्चता प्राप्त करके एक शक्तिशाली साम्राज्य की नींव रखने का अवसर मिल गया।

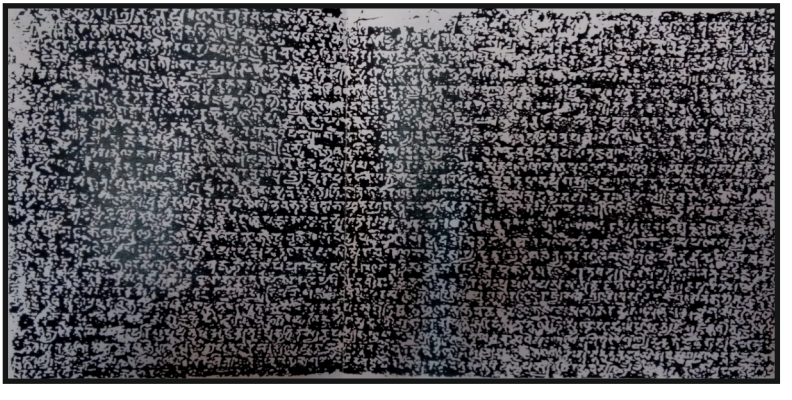
राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव का प्रतिहार शासक वत्सराज व पालवंशीय धर्मपाल पर आक्रमण

राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव उत्तर भारत में वत्सराज और धर्मपाल की गतिविधियों से बेखबर नहीं था। वत्सराज द्वारा साम्राज्य-स्थापना की स्थिति उसके लिए असह्य थी। गोविन्द तृतीय के वनि-दिन्दोरी और राधनपुर अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ध्रुव ने वत्सराज को पराजित कर कहीं मरुदेश में शरण लेने के लिए विवश किया। साथ ही उसने वत्सराज के यश के साथ वे दोनों राजछत्र भी छीन लिए जिन्हें उसने गौड़राज धर्मपाल से छीना था।[34] संभवत: जिस समय वत्सराज पाल राजा धर्मपाल को पराजित करके उसके दोनों राजछत्रों को लेकर अवन्ति की तरफ लौट रहा था, उसी समय ध्रुव ने उसे मार्ग में घेर लिया। इस अप्रत्याशित स्थिति का सामना करने के लिए वत्सराज तैयार नहीं था। वह ध्रुव से पराजित हुआ और रणक्षेत्र से भागकर राजपूताने में अपने पुराने पैतृक सत्ता-केन्द्र जाबालिपुर (जालौर) में शरण लेने को विवश हुआ। इस पराजय से वत्सराज की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुंचा और उसका उत्तरी भारत का नव अर्जित सम्राट् पद भी स्वप्न की भांति बिखर गया। इससे प्रतिहारों की नवोदित शक्ति को गहरा धक्का लगा। इस पराजय के पश्चात् वत्सराज के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। वत्सराज को पराजित करने के पश्चात् ध्रुव दोआब तक चढ़ आया और उसने धर्मपाल को भी पराजित किया[35] लेकिन शीघ्र ही वह उत्तर भारत से दक्षिण में अपने राज्य को वापस लौट गया। इससे वत्सराज को अपना अवन्ति का राज्य पुन: प्राप्त कर लेने का अवसर अवश्य मिल गया परन्तु वह अपनी पहले जैसी शक्ति दोबारा प्राप्त नहीं कर सका। वत्सराज के 795 ई. के जोधका अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने राष्ट्रकूट क्षेत्रों- कर्णाट और लाट पर सफल अभियान किये तथा उसके सैनिकों ने दक्षिणी समुद्र के अस्वादिष्ट जल का सेवन किया। अभिलेख में उसे 'सार्वभौम नृपतित्व'[36] कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ध्रुव ने अभिलेख की तिथि 795 ई. के बाद ही वत्सराज (775-800 ई.) और धर्मपाल दोनों पर आक्रमण किये।

पाल राजा धर्मपाल का कन्नौज पर अधिकार

राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव के दक्षिण की ओर लौटते ही पुन: धर्मपाल ने उत्तर भारत में अपनी प्रभुसत्ता की स्थापना के लिए अभियान प्रारंभ किया। ध्रुव के आक्रमण से

वत्सराज को जो धक्का लगा, उसका पूर्ण लाभ उठाते हुए धर्मपाल (770–810 ई.) ने कन्नौज पर आक्रमण करके वहाँ पर शासन कर रहे वत्सराज के प्रतिनिधि इन्द्रायुध को पराजित किया और उसके स्थान पर अपने संरक्षण में चक्रायुध को गद्दी पर बिठाया। उसने चक्रायुध के राज्याभिषेक के अवसर पर वहां एक दरबार का आयोजन किया जिसमें अन्य राज्यों के राजाओं के साथ कुरु (हरियाणा) के शासक को भी आमंत्रित किया।[37] खलीमपुर अभिलेख के अनुसार कन्नौज दरबार में अवन्तिराज (वत्सराज) को भी विवश होकर शामिल होना पड़ा था।[38] अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि दरबार में आए सभी राजा धर्मपाल की विजयों से भयभीत होकर उसकी अधीनता मानने लगे थे और इसी कारण वे दरबार में उपस्थित हुए थे। कन्नौज पर धर्मपाल के अधिकार और वहां पर दरबार लगाये जाने की तिथि 795 ई. के बाद की होनी चाहिए क्योंकि वत्सराज के जोधका, सिरसा अभिलेख[39] (चित्र–1) के अनुसार इस समय हरियाणा पर वत्सराज का सामन्त गल्लक शासन कर रहा था। धर्मपाल ने 795 ई. के बाद और 800 ई. के पूर्व ही कभी कन्नौज और हरियाणा पर अधिकार किया। इस समय उसने कन्नौज से वत्सराज के प्रतिनिधि इन्द्रायुध को हटाकर अपने प्रतिनिधि चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया तथा हरियाणा में वत्सराज के सामन्त गल्लक को हटाकर तोमरवंशी जाउल को अपना सामन्त नियुक्त किया प्रतीत होता है। अत: कन्नौज में धर्मपाल द्वारा आयोजित दरबार में अवन्तिराज (वत्सराज) तथा कुरुराज (जाउल) 795 ई. से 800 ई. के बीच उपस्थित हुए होंगे।



चित्र 1: वत्सराज प्रशस्ति, जोधका (सिरसा)

नागभट्ट द्वितीय द्वारा कन्नौज में प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना

वत्सराज की मृत्यु के पश्चात् लगभग 800 ई. में उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार राज्य का शासक बना। प्रतिहारों के गौरव को पुर्नस्थापित करने और उत्तरी भारत में साम्राज्य स्थापना हेतु उसे गौड़ नरेश धर्मपाल और राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय से निपटना आवश्यक था। ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि नागभट्ट ने अपने साम्राज्य का विस्तार प्रारंभ कर दिया था।[40] अपने पिता ध्रुव की भाँति गोविन्द तृतीय भी प्रतिहारों की बढ़ती हुई शक्ति को सहन नहीं कर सकता था। अत: उसने उत्तरी भारत पर अपने सैनिक अभियान प्रारंभ कर दिए। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के 871 ई. के संजन अभिलेख से ज्ञात होता है कि गोविन्द ने 'नागभट्ट के सुयश को युद्ध में हर लिया था'।[41] राधनपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि गोविन्द तृतीय ने नागभट्ट द्वितीय के शौर्य को नष्ट कर दिया और भय के मारे न जाने स्वयं कहां भाग गया, जहां स्वप्न में भी उसे युद्ध न दिखायी दे।[42] पठारी स्तम्भलेख (861 ई.) से ज्ञात होता है कि गोविन्द तृतीय के सामन्त कर्कराज ने 'नागावलोक को शीघ्र ही पीछे हटने को विवश कर दिया'।[43] यह नागावलोक नागभट्ट द्वितीय ही था।

नागभट्ट द्वितीय को पराजित करने के पश्चात् आगे बढ़कर गोविन्द ने चक्रायुध और धर्मपाल को भी आत्मसमर्पण के लिए विवश किया।[44] नागभट्ट द्वितीय और धर्मपाल दोनों ही यह भलीभांति समझते थे कि कन्नौज साम्राज्य के लिए निर्णयकारी युद्ध तो उन्हीं दोनों के बीच होना है, गोविन्द तृतीय तो अपने पिता ध्रुव की भांति उत्तरी भारत में अपनी दिग्विजय की अभिलाषा पूरी करके स्वदेश लौट जायेगा। फलत: नागभट्ट द्वितीय ने तो उसका कहीं भी दृढ़ प्रतिरोध नहीं किया तथा कन्नौज के शासक एवं उसके संरक्षक धर्मपाल ने भी बिना युद्ध किए उसके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार दोनों ने ही अपनी शक्ति को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा।

अपने राज्य की आन्तरिक समस्याओं के कारण गोविन्द तृतीय शीघ्र ही दक्षिण को लौट गया और राज्य के मामलों में इतना उलझ गया कि भविष्य में वह फि र कभी उत्तर भारत की ओर नहीं आ सका। उत्तर भारत में नागभट्ट का प्रतिद्वन्द्वी पाल नरेश धर्मपाल भी अपने दीर्घकालीन शासन के बाद वृद्ध हो चला था। ऐसी

परिस्थितियों में नागभट्ट ने कन्नौज की ओर ध्यान दिया, जहां पर धर्मपाल द्वारा संरक्षित चक्रायुध शासन कर रहा था। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार नागभट्ट ने दूसरों पर आश्रित रहने के कारण नीच भाव रखने वाले चक्रायुध पर आक्रमण करके उसे पराजित किया[45] और उसे अपदस्थ कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। यही नहीं उसने अपनी राजधानी उज्जैनी से स्थानान्तरित कर कन्नौज में स्थापित की। इसी समय उसने 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की सम्राट् सूचक उपाधि भी धारण की।[46] नागभट्ट की कन्नौज विजय की तिथि को 810 ई. के आस-पास रखा जा सकता है।

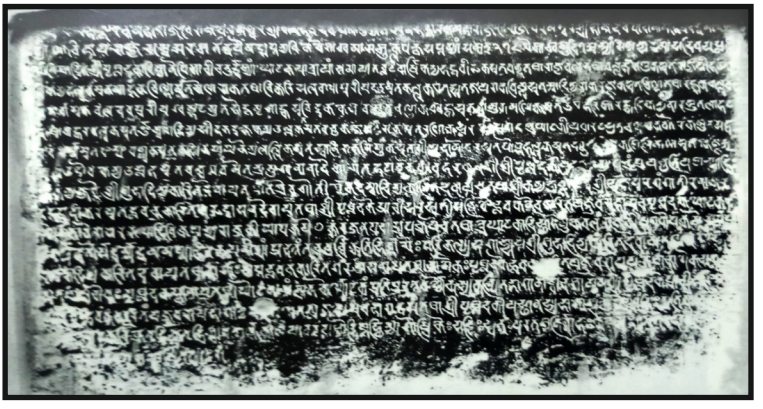
चक्रायुध को पराजित करने के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय ने पाल राजा धर्मपाल पर आक्रमण किया। ग्वालियर अभिलेख[47] से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में नागभट्ट ने धर्मपाल को पराजित किया। प्रतिहार बाउक के जोधपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह युद्ध मुंगेर में हुआ था[48] , जिसमें नागभट्ट के सामन्त कक्क ने गौड़ों के विरुद्ध लड़कर यश प्राप्त किया। कक्क के साथ इस युद्ध में नागभट्ट के अन्य सामन्तों में चालुक्यवंशी वाहूकधवल और गुहिलवंशी शंकरगण ने भी भाग लिया था।[49]

कन्नौज के चक्रायुध और पाल राजा धर्मपाल को पराजित करके 810 ई. के आसपास नागभट्ट ने हरियाणा को जीतकर वहां पर धर्मपाल द्वारा नियुक्त सामन्त, संभवत: जाउल, को हटाकर अपना सामन्त नियुक्त किया। स्कन्दपुराण से भी ज्ञात होता है कि सरस्वती और दृषद्वती का ब्रह्मवर्त क्षेत्र (हरियाणा) नागभट्ट द्वितीय के अधिकार में था।[50] ग्वालियर अभिलेख[51] तथा जैन ग्रंथ *प्रभावकचरित*[52] के अनुसार उसने राजगिरि (राजौरी) पर विजय प्राप्त की थी। इससे ज्ञात होता है कि उसने पंजाब तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।[53] नागभट्ट के शासनकाल के उपर्युक्त घटनाक्रम के सम्बन्ध में यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि उसके समय की राजनीतिक घटनाओं की जानकारी के जो भी साक्ष्य उपलब्ध हैं, उनसे उनका तिथिक्रम निश्चित करना बड़ा कठिन है जिसके कारण उसके शासनकाल का आकलन भी सही परिप्रेक्ष्य में करना आसान नहीं है। यही कारण है कि इस विषय पर लिखने वाले प्राय: सभी विद्वान् उन घटनाओं का वर्णन अलग-अलग क्रम से करते हैं।

नागभट्ट द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र रामभद्र (833-836 ई.) प्रतिहार राज्य का शासक बना। वह एक निर्बल शासक था तथा उसका शासनकाल अल्पकालीन था। उसके राज्यकाल में अशान्ति और अव्यवस्था का वातावरण रहा तथा प्रतिहार राज्य की क्षति हुई परन्तु हरियाणा पर इस अस्थिरता का कोई प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। इससे प्रतीत होता है कि हरियाणा रामभद्र के समय में भी प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत ही बना रहा।

रामभद्र के बाद उसके पुत्र मिहिरभोज (836-885 ई.) ने प्रतिहार राज्य की बागडोर संभाली। उसकी राजधानी प्रारंभ से ही कन्नौज थी। उसका अधिक प्रचलित नाम भोज था। ग्वालियर के चतुर्भुज मंदिर अभिलेख[54] के अनुसार उसकी अधिक प्रचलित उपाधि 'आदिवराह' थी, जिसका प्रयोग उसके सिक्कों पर भी मिलता है। पाल वंश में उसका समकालीन शासक उसी के समान महत्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली देवपाल था। भोज ने पालों से सफलतापूर्वक संघर्ष किया और अपने राज्य में शान्ति बनाए रखी।

भोज ने उत्तर-पश्चिम की ओर अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया जिससे दक्षिण-पूर्वी पंजाब तक का क्षेत्र उसके अधिकार में आ गया। गुहिल शासक बालादित्य के चाटसू (जयपुर के समीप) अभिलेख से ज्ञात होता है कि भोज के सामन्त गुहिल शासक हर्षराज ने 'उत्तरी दिशा के सभी राजाओं को जीतकर भक्तिपूर्वक भोजराज को घोड़ों की भेंट दी'।[55] यह हर्षराज, नागभट्ट द्वितीय के गुहिल सामन्त शंकरगण, जिसने अपने स्वामी की गौड़-युद्ध में सहायता की थी, का पुत्र था। नागभट्ट के समय से ही चाटसू के गुहिल शासक प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते आ रहे थे। हर्षराज की उत्तर के राजाओं पर विजय संभवत: भोज की पंजाब विजय है जिसमें उसने भोज के सामन्त रूप में भाग लिया था। कल्हण की *राजतरंगिणी*[56] से भी ज्ञात होता है कि भोज का साम्राज्य दक्षिण-पूर्वी पंजाब तक फैला हुआ था। इससे स्पष्ट है कि पंजाब तक का क्षेत्र भोज के अधिकार में होने से हरियाणा क्षेत्र भी उसके साम्राज्य के अन्तर्गत आता था। इस बात की पुष्टि उसके समय के पेहवा[57] (चित्र-2), सिरसा[58] तथा दिल्ली अभिलेखों[59] और हरियाणा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त उसके सिक्कों और सिक्के ढालने के सांचों की प्राप्ति से होती है।

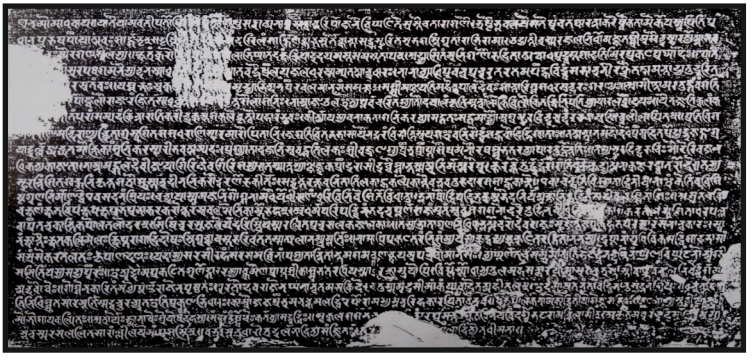


चित्र 2: मिहिरभोज अभिलेख, पेहवा

पेहवा (पृथूदक) से प्राप्त हर्ष संवत् 276 (882 ई.) का अभिलेख प्रतिहार शासक मिहिरभोज के शासन के अन्तिम काल से सम्बन्ध रखता है। इससे हरियाणा पर प्रतिहार आधिपत्य प्रमाणित होने के साथ-साथ यह भी ज्ञात होता है कि पेहवा उत्तरी भारत का एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। यहां पर प्रतिवर्ष घोड़ों का मेला लगता था, जिसमें देश के विभिन्न भागों से आए व्यापारियों द्वारा घोड़ों की खरीद-फरोख्त होती थी। घोड़ों के क्रय-विक्रय पर सभी व्यापारियों को कर देना होता था जिसे मन्दिरों में देने की व्यवस्था की गयी थी।[60] अभिलेख में घोड़ों के मेले का उल्लेख होने से यह उद्घाटित होता है कि प्रतिहार शासक अश्वसेना के संगठन पर विशेष ध्यान देते थे। इस तथ्य की पुष्टि अरब सौदागर सुलेमान, जो 851 ई. में भारत आया था, के विवरण से होती है। वह कहता है कि प्रतिहारों की अश्वसेना के समान विशाल एवं सुसंगठित अश्वसेना अन्य किसी भारतीय राजा के पास नहीं थी।[61]

हरियाणा में खोखराकोट[62] (रोहतक), ककराला[63] (जिला महेन्द्रगढ़), इन्द्री (जिला गुड़गांव), हांसी[64] (जिला हिसार), मोहनबाड़ी[65] (जिला झज्जर) आदि स्थानों से कुछ सिक्के मिले हैं जिनके पूर्व भाग पर वराह (विष्णु अवतार) का चित्रण मिलता है तथा पृष्ठ भाग पर उसकी उपाधि 'श्रीमदादिवराह' का अंकन मिलता है। खोखराकोट से इन सिक्कों को ढालने के सांचे भी मिले हैं इसके अतिरिक्त हरियाणा के अनेक स्थानों से प्राप्त नवीं-दसवीं सदी की प्रस्तर-निर्मित वराह की मूर्तियाँ तथा सिरसा से प्राप्त एक अभिलेख[66] भी हरियाणा पर मिहिरभोज के अधिकार

को सिद्ध करने में सहायक हैं। इस प्रकार इन सभी साक्ष्यों के अध्ययन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मिहिरभोज के शासनकाल में हरियाणा प्रतिहार साम्राज्य का अभिन्न अंग था।



चित्र 3: महेन्द्रपाल प्रथम की प्रशस्ति, पेहवा

मिहिरभोज के बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम (885 910 ई.) कन्नौज की गद्दी पर बैठा। उसने अपने शासनकाल में न केवल पिता से प्राप्त प्रतिहार साम्राज्य को संगठित एवं सुरक्षित ही रखा, बल्कि अपने समकालीन पाल वंश के निर्बल शासक नारायणपाल की दुर्बलता का लाभ उठाकर पूर्व दिशा में उसका विस्तार भी किया। उसके शासनकाल के दूसरे वर्ष से उन्नीसवें वर्ष तक के कुछ अभिलेखों का प्राय: समस्त मगध एवं उत्तरी बंगाल के क्षेत्रों से पाया जाना तथा इन क्षेत्रों में पाल अभिलेखों का न मिलना, निश्चित रूप से इस तथ्य का परिचायक है कि इन क्षेत्रों से पालों का अधिकार उस काल में समाप्त हो गया था। इस प्रकार महेन्द्रपाल ने पालों के इन क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित कर प्रतिहार साम्राज्य की पूर्वी सीमा में पर्याप्त वृद्धि की। उत्तर दिशा में महेन्द्रपाल का अधिकार हरियाणा (पूर्वी पंजाब) तक विस्तृत था, जो कि पेहवा से प्राप्त उसके एक अतैथिक अभिलेख से प्रमाणित होता है (चित्र-3)।[67] इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहारों ने हरियाणा में तोमरों को अपने सामन्त रूप में नियुक्त किया था। अभिलेख में तोमर सामन्तों की वंशावली तथा महेन्द्रपाल के अधीन तोमर सामन्त जज्जुक के तीन पुत्रों गोग्ग, पूर्णराज और देवराज द्वारा पेहवा में सरस्वती तट पर विष्णु त्रिमंदिरों के निर्माण का उल्लेख हैं।[68]

प्रतिहार सत्ता का क्रमिक पतन

भोज द्वितीय – महेन्द्रपाल प्रथम के पश्चात् उसके दो पुत्रों भोज द्वितीय और महीपाल में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ यहीं से प्रतिहारों के पतन का भी श्रीगणेश हुआ। सर्वप्रथम महेन्द्रपाल का ज्येष्ठ पुत्र भोज द्वितीय (910–912 ई.) कलचुरि नरेश कोक्कलदेव प्रथम के सहयोग से गद्दी पर बैठा लेकिन भोज द्वितीय का शासन अत्याल्पकालिक था तथा उसके शासन की किसी महत्वपूर्ण घटना का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

महीपाल (912–945 ई.)– महेन्द्रपाल का दूसरा पुत्र महीपाल प्रतिहार सामन्त चन्देल नरेश हर्षदेव की सहायता से भोज द्वितीय को पदच्युत कर लगभग 912 ई. में स्वयं कन्नौज की गद्दी पर बैठा।[69] उसके शासनकाल में बगदाद निवासी अल–मसूदी (912–916 ई.) भारत–यात्रा पर आया था, जिसने कन्नौज के प्रतिहार (बउरा) राजा की व्यापक शक्ति पर प्रकाश डाला है। उसके अनुसार महीपाल ने 'दक्षिण और उत्तर तथा पूर्व और पश्चिम में विशाल सेनाएं रखी थीं क्योंकि वह चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था।' अल–मसूदी उसकी चारों दिशाओं की सेनाओं की अलग–अलग संख्या सात लाख से नौ लाख तक बताता है तथा उसके शत्रुओं में मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजाओं और सिन्ध एवं मुल्तान के अरबों की प्रमुख रूप से गिनती करता है।[70] उसके कथन से यह विदित होता है कि महीपाल का साम्राज्य उत्तर में पंजाब तथा पश्चिम में सिन्ध से लेकर दक्षिण में राष्ट्रकूटों की सीमाओं तक फैला हुआ था। इससे स्पष्ट है कि हरियाणा महीपाल के शासनकाल में प्रतिहार साम्राज्य का अंग था और महीपाल ने अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में प्रतिहार साम्राज्य पर किसी प्रकार की आंच नहीं आने दी थी। किन्तु महीपाल को भी अपने पूर्वजों की भांति राष्ट्रकूट आक्रमणों का सामना करना पड़ा।

राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ के खम्भात अभिलेख से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया।[71] आक्रमण से त्रस्त होकर महीपाल को अपनी राजधानी कन्नौज छोड़कर भागना पड़ा। किन्तु शीघ्र ही इन्द्र को अपने दक्षिण के शत्रुओं से निपटने के लिए वापस लौटना पड़ा। महीपाल ने इसका पूरा लाभ उठाया और चन्देल सामन्त हर्ष की सहायता से कन्नौज और उसके

आसपास के सभी क्षेत्रों पर पुन: अधिकार कर लिया। विद्वानों के अनुसार इन्द्र तृतीय का प्रतिहार राज्य पर आक्रमण 917 ई. के लगभग हुआ। राष्ट्रकूट आक्रमण से उत्पन्न अव्यवस्थित स्थिति से प्रतिहारों के शत्रु पालों ने भी लाभ उठाया और प्रतिहारों के सोन नदी के पूर्वी किनारे तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय के बाद गोविन्द चतुर्थ और उसके उत्तराधिकारी संभवत: अपनी घरेलू समस्याओं में ही फंसे रहे जिससे महीपाल को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करने का सुनहरा अवसर मिल गया। उसने अपनी स्थिति धीरे-धीरे सुदृढ़ करके अनेक विजयें की। राजशेखर, जो उस समय जीवित था, ने महीपाल को आर्यावर्त का महाराजाधिराज और मुरल, मेकल, कलिंग केरल कुलूत, कुन्तल और रमठ आदि प्रान्तों का विजेता कहा है। यद्यपि कवि के इस काव्यात्मक उल्लेख की पुष्टि के लिए अभिलेखीय प्रमाणों का अभाव है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल ने अपनी प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करने के लिए इनमें से कुछ पर आक्रमण अवश्य किया होगा। कुलूत उत्तर दिशा में था और उसकी पहचान कुल्लू क्षेत्र से की जाती है। रमठों को राजशेखर ने हरियाणा के पृथूदक से आगे स्थित बतलाता है। पृथूदक के आसपास के क्षेत्र मिहिरभोज के समय से ही प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित थे।[72] अत: कुलूत और रमठ प्रदेशों पर महीपाल का आक्रमण अपने साम्राज्य की पैतृक सीमाओं से आगे बढ़कर कुल्लू तक के प्रदेश को अधिकृत करने के लिए ही हुआ होगा।

महीपाल के शासन के अन्तिम दिनों में राष्ट्रकूटों ने कृष्ण तृतीय के नेतृत्व में एक बार फिर प्रतिहार राज्य पर आक्रमण किया जिसके परिणामस्वरूप कालंजर और चित्रकूट प्रतिहारों के हाथ से निकल गए।[73] संभवत: महीपाल के वृद्ध हो जाने के कारण ही बुन्देलखंड के ये दोनों क्षेत्र उसके हाथ से निकल गए। यहीं से प्रतिहारों का क्रमिक पतन प्रारम्भ हुआ। महीपाल की मृत्यु के बाद प्रतिहार शक्ति कमजोर पड़ गई, जिसका लाभ उठाकर हरियाणा में तोमर स्वतंत्र हो गए। इस प्रकार हरियाणा से प्रतिहार – सत्ता का पटाक्षेप हो गया।

सन्दर्भ

1. पी. सी. बागची, ''सिनो-इण्डियन रिलेशन'', सिनो-इण्डियन स्टडीज, वॉ. 1, कलकता, पृ. 69; बुद्ध प्रकाश, ''तिब्बत, काश्मीर और नोर्थ

इण्डिया 647–747'', *बुलेटिन ऑफ तिब्बतोलोजी,* खण्ड 6, न. 2, जुलाई 1969, पृ. 40

2. राव बहादुर एच. कृष्ण शास्त्री और हीरानन्द शास्त्री (सम्पादक) 'ग्वालियर प्रशस्ति ऑफ द गुर्जर–प्रतिहार किंग भोज', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम– XVIII, कलकता, 1983, पृ. 108 और 111, श्लोक 7
3. बाणभट्ट, *हर्षचरित,* अनुवाद इ. बी. कॉवेल एण्ड एफ डब्लू. टॉमस, रोयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1897, पृ. 116 और 135
4. वी. एन. दत्ता और एच. ए. फड़के, *हिस्ट्री ऑफ कुरुक्षेत्र,* विशाल प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, 1984, पृ. 75
5. बी.एन. पुरी, ''द हिस्ट्री ऑफ द गुर्जर प्रतिहार'', शोध–प्रबन्ध, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, 1957, पृ. 75 (ऑनलाईन उपलब्ध है)
6. बुद्धप्रकाश, *ग्लिम्प्सेज ऑफ हरियाणा,* कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1967, पृ. 18
7. *गौडवहो,* सम्पादक शंकर पांडूरंग पंडित, भंडारकर औरियंटल शोध संस्थान, पूना, 1929, पृ. 137, श्लोक 484
8. *राजतरंगिणी,* IV, 134, टिप्पणी।
9. जन–युन–हुआ, ''सम फ्रेश रिफ्लेक्शन्स ऑन यशोवर्मा ऑफ कन्नौज एण्ड मुक्तापीड़ ऑफ कश्मीर'', *जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री,* वॉल्यूम–45, पार्ट 1, केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम, अप्रैल 1967, पृ. 176–177
10. राजतरंगिणी, IV, 137–139
11. वही, खण्ड IV, 140
12. वही, खण्ड IV, 145
13. वी.ए. स्मिथ, 'कन्नौज एण्ड किंग यशोवर्मा', जे.आर.ए.एस., 1908, पृ. 761
14. *राजतरंगिणी,* IV, 144
15. आर.सी. मजूमदार (प्रधान सं.), *श्रेण्य युग,* (हिन्दी अनु. शिवदान सिंह चौहान), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1984, पृ. 149
16. आर.एस. त्रिपाठी, *हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कांक्वेस्ट,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1964, पृ. 200

17. जन-युन-हुआ, पूर्वोक्त, पृ. 168
18. आर. एस. त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृ. 197
19. आर. सी. मजूमदार, *श्रेण्य युग* (हिन्दी अनु.), पृ. 149
20. राजशेखरसूरीकृत, *प्रबन्धकोश,* सम्पादक जिन विजय, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन, वि.सं. 1991 (1935 ई.), पृ. 27 -28
21. प्रभाचन्द्राचार्यविरचित, *प्रभावकचरित,* (सम्पादक जिन विजय मुनि), सिंघी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि.सं. 1997 (1940 ई.), पृ. 83
22. एच.एन. द्विवेदी, *दिल्ली के तोमर (736-1193),* विद्या मंदिर प्रकाशन, मुरार ग्वालियर, 1973, पृ. 180-95
23. *एपिग्राफि या इंडिका,* वॉल्यूम-XVIII, पूर्वोक्त, पृ. 108 और 111, श्लोक 6-7
24. बाणभट्ट, *हर्षचरित,* अनुवाद इ. बी. कॉवेल एण्ड एफ डब्लू. टॉमस, रोयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1897, पृ. 135
25. के.वी. रमेश, 'एन इन्सक्रिप्शन ऑफ प्रतिहार वत्सराज, शक 717', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम-XLI (1975-76), महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1989, पृ. 49-57
26. जगदीश प्रसाद और विरजानन्द देवकरणि, 'जोधका (सिरसा) से प्राप्त वत्सराज अभिलेख', *हरियाणा का पुरातात्त्विक वैभव,* (संपादक) एस.के. वशिष्ठ, निर्मल बुक एजेंसी, कुरुक्षेत्र, 2018, पृ. 269-282
27. वही
28. *हरिवंशपुराण,* पन्नालाल जैन (संपादक), जैन साहित्य सदन, चान्दनी चौक, दिल्ली, 1994, पृ. 492, श्लोक 66.53
29. आर.सी. मजूमदार (प्रधान सं.), *द एज ऑफ इम्पीरीयल कन्नौज,* भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1964, पृ. 23
30. वही
31. ई. हुल्टस्च (सम्पादक), 'राधनपुर प्लेटस ऑफ गोविन्द तृतीय शक-संवत् 730', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम-VI (1900-01), महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1981, पृ. 243, श्लोक-8

32. जे. एफ फ्लीट, 'संस्कृत एण्ड ऑल्ड कानरेस इन्सक्रिप्शंस', *द इण्डियन एन्टिक्यूरी,* खण्ड XI, 1882, स्वाति पब्लिकेशनस, दिल्ली, 1984, पृ. 157

33. श्री चन्द्रधरशर्मण (सं.), *पृथ्वीराजविजयमहाकाव्यम,* अजयमेरुनगरे वैदिक यंत्रालय, वि.सं. 1997, पंचम: सर्ग, श्लोक–20, पृ. 105

34. *द इण्डियन एन्टिक्यूरी,* वॉल्यूम–XI, पूर्वोद्धृत, पृ. 157, पंक्ति 12; ई. हुल्टस्च (सम्पादक), *एपिग्राफिया इंडिका,* इन्सक्रिप्शंस–VI, पृ. 243, श्लोक 8

35. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोद्धृत, पृ. 23

36. के.वी. रमेश, 'एन इन्सक्रिप्शन ऑफ प्रतिहार वत्सराज, शक 717', पूर्वोद्धृत, पृ. 49–57; जगदीश प्रसाद और विरजानन्द देवकरणि, 'जोधका (सिरसा) से प्राप्त वत्सराज अभिलेख', पूर्वोद्धृत, पृ. 269– 282

37. एफ कीलहोर्न, 'खलीमपुर प्लेटस ऑफ धर्मपालदेव', एपिग्राफ्मिा इंडिका, वॉल्यूम–IV, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1979, पृ. 248, श्लोक 12; ई. हुल्टस्च, 'द भागलपुर प्लेट ऑफ नरायनपाल', *द इण्डियन एन्टिक्यूरी,* वॉल्यूम–XV, 1886, पृ. 305

38. *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–IV, पृ. 248, श्लोक 12

39. के.वी. रमेश, 'एन इन्सक्रिप्शन ऑफ प्रतिहार वत्सराज, शक 717', पूर्वोद्धृत, पृ. 49–57; जगदीश प्रसाद और विरजानन्द देवकरणि, 'जोधका (सिरसा) से प्राप्त वत्सराज अभिलेख', पूर्वोद्धृत, पृ. 269–282

40. *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–XVIII, पृ. 108 और 112, श्लोक 8 से 11

41. राव बहादुर एच. कृष्ण शास्त्री और हीरानन्द शास्त्री (सम्पादक) 'संजन प्लेट्स ऑफअमोघवर्ष–प्रथम, शक–संवत् 793', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–XVIII, पृ. 245 और 253, श्लोक 22

42. ई. हुल्टस्च (सम्पादक) 'राधनपुर प्लेटस ऑफ गोविन्द तृतीय शक–संवत् 730', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–VI, पृ. 244, श्लोक 15

43. एफ कीलहोर्न, 'पठारी पिल्लर इन्सक्रिप्शन ऑफ परबल, संवत् 917', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम–IX, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1981, पृ. 253 और 255, श्लोक 14

44. *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–XVIII, पृ. 245 और 253, श्लोक 23
45. वही, पृ. 108, श्लोक 9
46. डी. आर. भण्डारकर, ''बुचकल इन्सक्रिप्शन ऑफ नागभट्ट, संवत् 872'', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–IX, पृ. 199–200
47. वही, XVIII, पृ. 108, श्लोक 10
48. राव बहादुर एच. कृष्ण शास्त्री और हीरानन्द शास्त्री (सम्पादक) 'प्रतिहार बाउक का जोधपुर अभिलेख; वि.सं. 894', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम–XVIII, पृ. 96 और 98, श्लोक 24
49. आर. सी. मजूमदार, *द एज ऑफ इम्पीरीयल कन्नौज,* पृ. 25–26
50. *स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्यमाहात्म्य,* गोरखपुर, जनवरी 1951, पृ. 456–487
51. *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–XVIII, पृ. 108, श्लोक 11
52. जिन विजय मुनि (सं.), *प्रभावकचरित,* बप्पभट्टिसूरिचरित, *सिंधी जैन ग्रन्थमाला,* अहमदाबाद, 1940, पृ. 107, श्लोक 661–75
53. एच. ए. फड़के, *हरियाणा: एंशियंट एण्ड मेडिवल,* हर्मान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1990, पु. 81
54. ई. हुल्टस्च, 'द टू इन्सक्रिप्शंस ऑफ द वैल्लभटस्मिन टैम्पल एट ग्वालियर', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम–I, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1983, पृ. 156, श्लोक 22
55. डी.आर. भण्डारकर, 'चाटसू इन्सक्रिप्शंस ऑफ बालादित्य', *एपिग्राफ्मिा इंडिका,* वॉल्यूम–XII, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1982, पृ. 15, श्लोक 19
56. *राजतरंगिणी,* V, श्लोक 151
57. जी. बूहलर, 'द पेहवा इंस्करिप्शन ऑफ द टैम्पेल ऑफ गरीबनाथ', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–I, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1983, पृ. 186–188; देवेन्द्र हांडा, *एन एपिक पिलग्रिमेज–हिस्ट्री एन्ड एन्टिक्यूटि ऑफ पेहवा: एन्सियंट पृथूदक,* आर्यन बुक्स इन्ट्रनेशनल, नई दिल्ली, 2004, पृ. 84–88
58. राय बहादुर दयाराम साहनी, 'सिरसा स्टोन इन्स्क्रिप्शन ऑफ द टाइम ऑफ

भोजदेव', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–XXI, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1984, पृ. 295–296

59. *एनुअल रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया 1925–26,* कलकता, भारत सरकार, सेंटरल पब्लिकेशन ब्रान्च, 1928, पृ. 183

60. ब्रजेश कृष्ण, 'पेहवा इन्सक्रिप्शन्स ऑफ द गुर्जर प्रतिहार्स: ए सोशियो – कल्चरल इन्टरप्रटेशन', जे. एच. एस., XIV, नं. 1–2, 1982, पृ. 9–13

61. एच. एम. इलियट एण्ड जोहन डाउसन, *द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, एज टोल्ड बाई इटस ओन हिस्टोरियन,* वॉल्यूम–1, लॉ प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली, 2008, पृ. 5

62. सीलकराम, ''आर्कियोलॉजी ऑफ रोहतक एण्ड हिसार डिस्ट्रिक्टस (हरियाणा)'', अप्रकाशित पीएच.डी. शोधप्रबन्ध, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1972, पृ. 267, ये सिक्के गुरुकुल झज्जर संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

63. जगदीश सिंह राहड़, ''आर्कियोलॉजीकल सैटलमेंट पैटर्न ऑफ महेन्द्रगढ़ एंड रेवाड़ी डिस्ट्रिक्टस (हरियाणा)'', अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबन्ध, एम.डी.यू., रोहतक, 2001, पृ. 171–74

64. आदित्य लोहान, ''ए हिस्टोरिको–कल्चरल स्टैडी ऑफ द हांसी रीजन'', अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबन्ध, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1988, पृ 81. ये सिक्के गुरुकुल झज्जर संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

65. मनमोहन कुमार एण्ड यशवीर सिंह, 'सम लेटेस्ट क्राइन्स फ्रॉम मोहनबाड़ी, डिस्ट्रिक्ट झज्जर (हरियाणा)', *पंजाब हिस्ट्री कान्फ्रेंस, प्रोसीडिंग्स ऑफ 33 सेशन,* 2001, पृ. 50–52

66. *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम– XXI, पृ. 295–96

67. जी. बूहलर, 'एन एनडेटिड प्रशस्ति फ्रोम द रेन ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कनौज', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–I, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1983, पृ. 244

68. वही, पृ. 247, श्लोक 20–21

69. एफ कीलहोर्न, 'बिल्हरी स्टोन इन्सक्रिप्शन ऑफ द रुलर्स ऑफ चेदी', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम–I, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,

नई दिल्ली, 1983, पृ. 256, श्लोक 17

70. एच. एम. इलियट एण्ड जोहन डाउसन, *द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* वॉल्यूम-1, पृ. 23

71. डी.आर. भण्डारकर, ''कैम्बे प्लेटस ऑफ गोविन्द चतुर्थ, शक-संवत् 852'', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम-VII, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1981, पृ. 38, श्लोक 19

72. जी. बूहलर, 'एन एनडेटिड प्रशस्ति फ्रोम द रेन ऑफ महेन्द्रपाल ऑफ कनौज', *एपिग्राफिया इंडिका,* वॉल्यूम-I, 1983, पृ. 242-44

73. आर.जी. भण्डारकर, 'देवली प्लेट्स ऑफ कृष्ण तृतीय, शक-संवत् 862', वॉल्यूम-V, महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 1984, पृ. 194, श्लोक 25; आर.जी. भण्डारकर, 'कर्हाट प्लेट्स ऑफ कृष्ण तृतीय, शक-संवत् 880', वॉल्यूम- IV, पृ. 284, श्लोक 30

सह-आचार्य

इतिहास विभाग, समाज विज्ञान संकाय,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
सप्तसिंधु परिसर-1, देहरा, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश।